प्ररूपणा 9 - योग मार्गणा 2

आचार्य श्रीनेमीचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती

शरीर के प्रकार

	कर्म	नोकर्म
स्वरूप	ज्ञानावरणादि आठ कर्म स्कंध	औदारिकादि 4 शरीर
कर्म का उदय	कार्मण शरीर नामकर्म का उदय	औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीर नामकर्म का उदय

नोकर्म को कर्म कहने का कारण

नोकर्म = नो + कर्म

नो = निषेधरूप

नो = ईषत्, स्तोकरूप

कार्मण शरीर के समान गुणों का घात व गति आदि रूप पराधीनता नहीं करते

कार्मण शरीर के सहकारी

परमाणूहिं अणंतेहिं, वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु।
ताहि अणंताहिं णियमा, समयपबद्धो हवे एक्को॥245॥

- अर्थ - अनंत (अनंतानन्त) परमाणुओं की एक वर्गणा होती है और
- अनंत वर्गणाओं का नियम से एक समयप्रबद्ध होता है ॥245॥

पारिभाषिक शब्द

वर्ग

- समान अविभाग-प्रतिच्छेद शक्तिवाले कर्म या नोकर्म परमाणु

वर्गणा

- अनंत वर्गों का समूह

समयप्रबद्ध

- एक समय में आत्मा के साथ बंधनेवाले कर्म-नोकर्मरूप अनंत वर्गणाओं का समूह

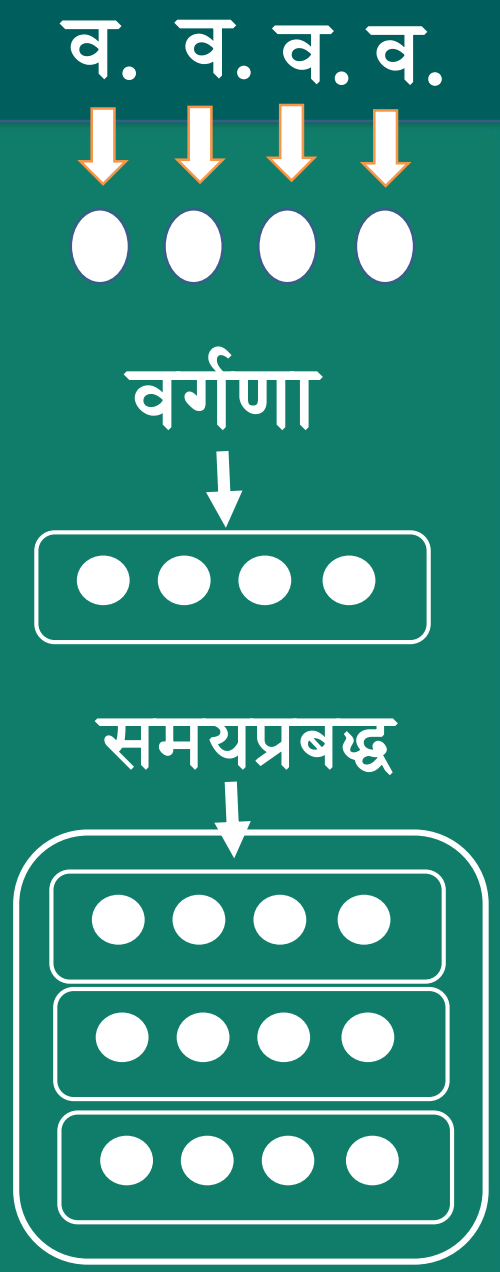

ताणं समयपबद्धा सेढिअसंखेज्जभागगुणिदकमा।
णंतेण य तेजदुगा, परं परं होदि सुहुमं खु॥246॥

- अर्थ - औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरों के समयप्रबद्ध उत्तरोत्तर क्रम से श्रेणि के असंख्यातवें भाग से गुणित हैं और
- तैजस तथा कार्मण शरीरों के समयप्रबद्ध अनंतगुणे हैं, किन्तु ये पाँचों ही शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं ॥246॥

5 शरीरों के समयप्रबद्ध का प्रमाण

शरीर	समयप्रबद्ध का प्रमाण
औदारिक	अनंतानंत परमाणु
वैक्रियिक	औदारिक × $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असं.}}$
आहारक	वैक्रियिक × $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असं.}}$
तैजस	आहारक × अनंत
कार्मण	तैजस × अनंत

जब समयप्रबद्ध असंख्यात गुणा है, तो औदारिक से वैक्रियिक स्थूल हुआ?

- ये शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं।
- परमाणु की संख्या अधिक होने पर भी इनका बंधन सूक्ष्म है।
- जैसे कपास के पिंड से लोहे के पिंड में अधिकपना होने पर भी लोहे का पिंड कम स्थान घेरता है।

ओगाहणाणि ताणं, समयपबद्धाण वग्गणाणं च।
अंगुलअसंखभागा, उवरुवरिमसंखगुणहीणा॥247॥

- अर्थ - इन शरीरों के समयप्रबद्ध और वर्गणाओं की अवगाहना का प्रमाण सामान्य से घनांगुल के असंख्यातवें भाग है, किन्तु विशेषतया आगे-आगे के शरीरों के समयप्रबद्ध और वर्गणाओं की अवगाहना का प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा हीन है ॥247॥

तस्समयबद्धवग्गणओगाहो सूइअंगुलासंख-भागहिदविंदअंगुलमुवरुवरिं तेण भजिदकमा॥248॥

- अर्थ - औदारिकादि शरीरों के समयप्रबद्ध तथा वर्गणाओं का अवगाहन सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से भक्त घनांगुलप्रमाण है और पूर्व-पूर्व की अपेक्षा आगे-आगे की अवगाहना क्रम-2 सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर प्राप्त होती हैं ॥248॥

5 शरीरों के समयप्रबद्ध और वर्गणा की अवगाहना

शरीर	समयप्रबद्ध अवगाहना	वर्गणा अवगाहना
औदारिक	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{सूंच्यगुल /असं.}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^2}$
वैक्रियिक	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^2}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^3}$
आहारक	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^3}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^4}$
तैजस	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^4}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^5}$
कार्मण	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^5}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूंच्यगुल /असं.})^6}$

जीवादो णंतगुणा, पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया।
जीवेण य समवेदा, एक्केक्कं पडि समाणा हु॥249॥

- अर्थ - पूर्वोक्त कर्म और नोकर्म के प्रत्येक परमाणु पर समान संख्या को लिये हुए जीवराशि से अनंतगुणे विस्रसोपचयरूप परमाणु जीव के साथ सम्बद्ध है ॥249॥

विस्रसोपचय

विस्रसा

- अपने ही स्वभाव से, आत्मा के परिणाम के बिना

उपचीयन्ते

- कर्म - नोकर्मरूप स्कन्ध (कर्म-नोकर्मरूप परिणए बिना) संबद्ध हैं

अर्थात् वे स्कन्ध जो कर्म-नोकर्म शरीर के साथ संबद्ध हैं, परन्तु कर्म-नोकर्म शरीर नहीं बने हैं, वे विस्रसोपचय कहलाते हैं।

विस्रसोपचय

कर्म-नोकर्मरूप होने योग्य परमाणु

जो प्रत्येक बद्ध कर्म-नोकर्मरूप परमाणु के साथ

जीवराशि से अनंत गुणे

जीव के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप

कर्म-नोकर्म हुए बिना, कर्म-नोकर्मरूप स्कंध से एक बंधनरूप रहते हैं ।

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे, सगसगउक्कस्ससंचओ होदि।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं॥250॥

- अर्थ - उत्कृष्ट योग को आदि लेकर जो जो सामग्री तत्-तत् कर्म या नोकर्म के उत्कृष्ट संचय में कारण है उस-उस सामग्री के मिलने पर औदारिकादि पाँचों ही शरीरवालों के उत्कृष्ट स्थिति के अन्तसमय में अपने-अपने कर्म और नोकर्म का उत्कृष्ट संचय होता है ॥250॥

उत्कृष्ट रूप से कर्म-नोकर्म का संचय अर्थात्

कर्म का संचय अर्थात्

सबसे अधिक कर्म परमाणु कब पाए जाते हैं?

उत्कृष्ट रूप से नोकर्म का संचय अर्थात्

सबसे अधिक औदारिक आदि शरीर के परमाणु कब पाए जाएंगे ?

अर्थात् 4 प्रकार के शरीरों में सबसे अधिक परमाणु वाले कब होंगे?

अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति के अन्त समय में।

आवासया हु भव, अद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य।
ओकट्टुक्कट्टणगा, छच्चेदे गुणिदकम्मंसे॥251॥

- अर्थ - कर्मों का उत्कृष्ट संचय करने के लिये प्रवर्तमान जीव के उनका उत्कृष्ट संचय करने के लिये ये छह आवश्यक कारण होते है - भवाद्धा, आयुष्य, योग, संक्लेश, अपकर्षण, उत्कर्षण ॥251॥

उत्कृष्ट संचय के आवश्यक कारण

भवाद्धा	आयु	योग	संक्लेश	अपकर्षण	उत्कर्षण
एक जैसे अनेक भव का कुल काल	एक भव का काल	उत्कृष्ट योग	तीव्र कषायरूप परिणाम	परमाणुओं की स्थिति का घटना	परमाणुओं की स्थिति का बढ़ना

पल्लतियं उवहीणं, तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं।
छावट्ठी कम्मट्ठिदि, बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं॥252॥

- अर्थ - उन औदारिक आदि पाँच शरीरों की बंधरूप उत्कृष्ट स्थिति औदारिक की तीन पल्य, वैक्रियिक की तैंतीस सागर, आहारक की अंतर्मुहूर्त, तैजस की छियासठ सागर है तथा
- कार्मण की सामान्य से सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण और विशेष से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्म की तीस कोड़ाकोड़ी सागर, मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, नाम और गोत्र की बीस कोड़ाकोड़ी सागर और आयुकर्म की तैंतीस सागर है। इसप्रकार बंध के प्रकरण में कही सबकी उत्कृष्ट स्थिति ग्रहण करना ॥252॥

5 शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति

शरीर	उत्कृष्ट स्थिति
औदारिक	3 पल्य
वैक्रियिक	33 सागर
आहारक	अंतर्मुहूर्त
तैजस	66 सागर
कार्मण	सामान्य-70 कोडाकोडी सागर विशेष—अपनी-अपनी कर्मस्थिति प्रमाण

अंतोमुहुत्तमेत्तं, गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं।
पल्लासंखेज्जदिमं, गुणहाणी तेजकम्माणं॥253॥

- अर्थ - औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरों में से प्रत्येक की उत्कृष्ट स्थिति संबंधी गुणहानि तथा गुणहानि आयाम का प्रमाण अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहर्त मात्र है और
- तैजस तथा कार्माण शरीर की उत्कृष्ट स्थितिसम्बंधी गुणहानि का प्रमाण यथायोग्य पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है ॥253॥

5 शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति

शरीर	गुणहानि आयाम	नाना गुणहानि
औदारिक	अंतर्मुहूर्त	सूत्र: $\frac{\text{स्थिति}}{\text{गुणहानि आयाम}}$
वैक्रियिक	अंतर्मुहूर्त	
आहारक	अंतर्मुहूर्त	
तैजस	पल्य/असं.	
कार्मण	पल्य/असं.	

विशेष

- तैजस की नाना गुणहानियों से कार्मण की नाना गुणहानियां कम है।
  - कितनी कम हैं?
  - असंख्यात गुणा हीन हैं ।

- कारण? तैजस के गुणहानि-आयाम से कार्मण का गुणहानि-आयाम बड़ा है।

समयप्रबद्ध का बटवारा - उदाहरण

- समयप्रबद्ध = 6300 परमाणु
- स्थिति = 48
- गुणहानि आयाम = 8

पद	सूत्र	संख्या
नाना गुणहानि	$\frac{\text{स्थिति}}{\text{गुणहानि आयाम}}$	$\frac{48}{8} = 6$
अन्योन्याभ्यस्त राशि	$2^{\text{नाना गुणहानि}}$	$2^6 = 64$
निषेकहार	$2 \times$ गुणहानि आयाम	$2 \times 8 = 16$

- अंतिम गुणहानि का द्रव्य $= \dfrac{\text{समयप्रबद्ध}}{\text{अन्योन्याभ्यस्त राशि} - 1}$

$$= \frac{6300}{64 - 1} = \frac{6300}{63} = 100$$

- पूर्व की गुणहानियों का द्रव्य इससे दुगुना-दुगुना है, अतः

पांचवी गुणहानि का द्रव्य	200
चतुर्थ गुणहानि का द्रव्य	400
तीसरी गुणहानि का द्रव्य	800
द्वितीय गुणहानि का द्रव्य	1600
प्रथम गुणहानि का द्रव्य	3200

प्रथम गुणहानि

- प्रथम निषेक $= \dfrac{\text{समयप्रबद्ध}}{\text{साधिक डेढ़ गुणहानि}}$

$= \dfrac{6300}{12\frac{39}{128}} = 512$

- चय $= \dfrac{\text{प्रथम निषेक}}{\text{निषेकहार}} = \dfrac{512}{16} = 32$
- प्रथम निषेक से अगले निषेक एक-एक चय हीन हैं । अतः प्रथम गुणहानि इस प्रकार प्राप्त होगी –

	प्रथम गुणहानि
8th निषेक	288
7th निषेक	320
6th निषेक	352
5th निषेक	384
4th निषेक	416
3rd निषेक	448
2nd निषेक	480
1st निषेक	512

प्रथम गुणहानि के सर्व-द्रव्य का प्रमाण = 3200

द्वितीय गुणहानि

- प्रथम गुणहानि के अंतिम निषेक से एक चय और घटाने पर द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक आता है । (288 – 32 = 256)
- प्रथम गुणहानि से आगे-आगे की गुणहानियों में चय आधा-आधा होता जाता है । $\frac{32}{2} = 16$
- अतः द्वितीय गुणहानि इस प्रकार होगी →

द्वितीय गुणहानि
144
160
176
192
208
224
240
256

द्वितीय गुणहानि के सर्व-द्रव्य का प्रमाण = 1600

शेष गुणहानियां भी इसी प्रकार निकालना

1st गुणहानि	2nd गुणहानि	3rd गुणहानि	4th गुणहानि	5th गुणहानि	6th गुणहानि
288	144	72	36	18	9
320	160	80	40	20	10
352	176	88	44	22	11
384	192	96	48	24	12
416	208	104	52	26	13
448	224	112	56	28	14
480	240	120	60	30	15
512	256	128	64	32	16

कर्म-नोकर्म की निषेक रचना में अंतर

- औदारिक आदि 4 नोकर्म शरीरों में आबाधा नहीं है। इसलिए प्रथम समय से ही निषेक रचना करना।
- कार्मण शरीर में आबाधा काल में निषेक रचना नहीं होती। अत: उसको छोड़कर निषेक रचना आबाधा के अगले समय से करना।

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं॥254॥

- अर्थ - प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध का बंध होता है और
- एक ही समयप्रबद्ध का उदय होता है तथा
- कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धों की सत्ता रहती है ॥254॥

णवरि य दुसरीराणं, गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो।
गुणहाणीण दिवड्ढं, संचयमुदयं च चरिमम्हि॥255॥

- अर्थ - औदारिक और वैक्रियिक शरीर में यह विशेषता है कि इन दोनों शरीरों के बध्यमान समयप्रबद्धों की स्थिति भुक्त आयु से अवशिष्ट आयु की स्थितिप्रमाण हुआ करती है और इनका आयु के अन्त्य समय में डेढ़ गुणहानिमात्र उदय तथा संचय रहता है ॥255॥

5 शरीरों के बंध, उदय, सत्त्व का द्रव्य प्रमाण

शरीर	बंध (प्रतिसमय)	उदय (प्रतिसमय)		सत्त्व
तैजस	1 समयप्रबद्ध	1 समयप्रबद्ध		
कार्मण				
औदारिक	1 समयप्रबद्ध	प्रथम समय	1 निषेक	चरम समय में:-- किंचिदून डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध
		द्वितीय समय	2 निषेक	
		तृतीय समय	3 निषेक	
वैक्रियिक		अंत समय	किंचिदून डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध	
आहारक	1 समयप्रबद्ध	1 समयप्रबद्ध		चरम समय में:-- किंचिदून डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध
		अंत समय	किंचिदून डेढ़ गुणहानि × समयप्रबद्ध	

ओरालियवरसंचं, देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स।
तिरियमणुस्सस्स हवे, चरिमदुचरिमे तिपल्लाठिदिगस्स॥256॥

- अर्थ - तीन पल्य की स्थितिवाले देवकुरु तथा उत्तरकुरु में उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्यों के चरम समय में औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय होता है ॥256॥

औदारिक शरीर के उत्कृष्ट संचय की सामग्री

1. तीन पल्योपम की आयु लेकर देवकुरु-उत्तरकुरु में जन्मा हुआ जीव स्वामी है ।
2. ऋजुगति से उत्पन्न भव के प्रथम समय से उत्कृष्ट योग के द्वारा आहार ग्रहण किया ।
3. उत्कृष्ट वृद्धि से बढ़े हुए उत्कृष्ट योगस्थानों का बहुत बार ग्रहण किया ।
4. सबसे लघु अंतर्मुहूर्त काल द्वारा पर्याप्त हुआ ।
5. वचनयोग की शलाका और काल अल्प है ।
6. उत्कर्षण ज्यादा, अपकर्षण कम
7. विकुर्वणा अल्प याने विक्रिया अल्प ।

औदारिक शरीर के उत्कृष्ट संचय की सामग्री

5. मनोयोग के काल अल्प हैं ।
6. नखादिछेद अल्प हैं ।
7. आयुकाल के मध्य कदाचित् विक्रिया नहीं की ।
8. जीवितव्य काल के स्तोक शेष रहने पर योग यवमध्य के ऊपर अंतर्मुहूर्त काल रहा ।
12. अन्तिम जीवगुणहानि स्थानान्तर में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहा ।
13. चरम और द्विचरम समय में उत्कृष्ट योग को प्राप्त हुआ ।
14. अन्तिम समय में तद्भवस्थ उस जीव के औदारिक शरीर का उत्कृष्ट प्रदेश संचय होता है ।

वेगुव्वियवरसंचं, बावीससमुद्दआरणदुगम्हि।
जम्हा वरजोगस्स य, वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा॥257॥

- अर्थ - वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय, बाईस सागर की आयु वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के ऊपरी पटल संबंधी देवों के ही होता है, क्योंकि वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट योग तथा उसके योग्य दूसरी सामग्रियाँ अन्यत्र अनेक बार नहीं होती ॥257॥

वैक्रियिक शरीर के उत्कृष्ट प्रदेश संचय की सामग्री

22 सागर की स्थिति वाले आरण-अच्युत कल्प के देवों में उत्कृष्ट संचय होता है ।

शेष सब औदारिक शरीर की तरह कहना । केवल "नखच्छेद अल्प है" – यह विशेषण यहां संभव नहीं है । क्योंकि वैक्रियिक शरीर में छेद-भेद नहीं होता ।

तेजासरीरजेट्ठं, सत्तमचरिमम्हि विदियवारस्स।
कम्मस्स वि तत्थेव य, णिरये बहुवारभमिदस्स॥258॥

- अर्थ - तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय सप्तम पृथिवी में दसरी बार उत्पन्न होने वाले जीव के होता है और कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय अनेक बार नरकों में भ्रमण करके सप्तम पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले जीव के होता है। आहारक शरीर का उत्कृष्ट संचय प्रमत्तविरत के औदारिक शरीरवत् अंत समय में होता है ॥258॥

तैजस शरीर के उत्कृष्ट संचय की सामग्री

1. तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय सातवीं पृथ्वी में दूसरी बार उत्पन्न हुए जीव के होता है ।
2. जो पूर्वकोटी के आयु वाला जीव सातवीं पृथ्वी के जीव के नारकियों में आयु कर्म का बन्ध करता है वह तैजस शरीर के 66 सागर प्रमाण स्थिति के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक गोपुच्छाकाररूप से निषेक रचना करता है ।
3. फिर वह मरकर कुछ कम पूर्वकोटियों से हीन तैतीस सागर की आयु लेकर नरक में जाता है
4. वहां से आकर पूर्वकोटि की आयुवाला होता है ।

तैजस शरीर के उत्कृष्ट संचय की सामग्री

- वहां से कुछ कम पूर्वकोटि से हीन तैतीस सागर की आयु लेकर सातवें नरक में उत्पन्न होता है उसके अन्तिम समय में तैजसशरीर के प्रदेशाग्र का उत्कृष्ट संचय होता है ।
- शेष औदारिक शरीरवत् जानना ।

कार्मण शरीर के उत्कृष्ट प्रदेश संचय की सामग्री

1. जो जीव बादर पृथ्वीकायिक जीवों में अंतर्मुहूर्त से हीन पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर से कम कर्मस्थिति प्रमाण (70 कोड़ाकोड़ी सागर) काल तक रहा ।
2. पूर्वकोटि पृथक्त्व और दो हजार सागर त्रसों में घुमाना है अतः कर्मस्थिति में से उतना कम किया क्योंकि त्रसों का योग और आयु असंख्यातगुणी होती है और संक्लेश बहुल होते हैं ।
3. वहा (बादर पृथ्वीकायिक में) पर्याप्त भव बहुत और अपर्याप्तभव थोड़े धारण किये ।
4. पर्याप्तकाल दीर्घ और अपर्याप्तकाल थोड़ा हुआ ।
5. आयु का बन्ध उसके योग्य जघन्य योग से करता है ।

कार्मण शरीर के उत्कृष्ट प्रदेश संचय की सामग्री

6. ऊपर की स्थिति के निषेकों का उत्कृष्ट पद करता है । नीचे की स्थिति के निषेकों का जघन्यपद करता है ।
7. बहुत बार उत्कृष्ट योगस्थानों को प्राप्त होता है ।
8. बहुत बार बहुत संक्लेशरूप परिणामवाला होता है ।
9. इस प्रकार परिभ्रमण करके त्रस पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ ।
10. इसके आगे उपर्युक्त 2 से लेकर 7 तक की विशेषता जानना ।
11. अन्तिम भावग्रहण में नीचे सातवीं पृथ्वी के नारकियों में उत्पन्न हुआ । वहां भी उपर्युक्त सब नियम औदारिक शरीरवत् जानना ।
12. सातवें नरक में उसके चरम समय में कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय होता है ।

आहारक शरीर के उत्कृष्ट संचय की सामग्री

- औदारिक शरीरवत् जानना ।
- किन्तु आहारक शरीर को उत्पन्न करने वाले प्रमत्तविरत मुनिराज के ही उसका उत्कृष्ट संचय होता है ।

बादरपुण्णा तेऊ, सगरासीए असंखभागमिदा।
विक्किरियसत्तिजुत्ता, पल्लासंखेज्जया वाऊ॥259॥

- अर्थ - बादर पर्याप्तक तैजसकायिक जीवों का जितना प्रमाण है उनमें असंख्यातवें भाग प्रमाण विक्रिया शक्ति से युक्त हैं और
- वायुकायिक जितने जीव हैं उनमें पल्य के असंख्यातवें भाग विक्रियाशक्ति से युक्त हैं ॥259॥

विक्रिया शक्तियुक्त जीव-संख्या

बादर पर्याप्त अग्निकायिक

$$= \frac{\text{कुल बा.प.अ.}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\frac{\text{घनावली}}{\text{असंख्यात}}}{\text{असं.}\times\text{असं.}} =$$

बादर पर्याप्त वायुकायिक

$$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$$

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु।
वेगुव्वियपंचक्खा, भोगभुमा पुह विगुव्वंति॥260॥

- अर्थ - पल्य के असंख्यातवें भाग से अभ्यस्त (गुणित) घनांगुल का जगच्छ्रेणी के साथ गुणा करने पर जो लब्ध आवे उतने ही पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों में वैक्रियिक योग के धारक हैं, और
- भोगभूमिया तिर्यंच तथा मनुष्य तथा कर्मभूमियाओं में चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करते हैं ॥260॥

तिर्यंच एवं मनुष्य (विक्रिया शक्ति वाले)

$$\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}} \times \text{घनांगुल} \times \text{जगत्श्रेणी}$$

देवेहिं सादिरेया, तिजोगिणो तेहिं हीणतसपुण्णा।
वियजोगिणो तदणा, संसारी एक्कजोगा हु॥261॥

- अर्थ - देवों से कुछ अधिक त्रियोगियों का प्रमाण है।
- पर्याप्त त्रस राशि में से त्रियोगियों को घटाने पर जो शेष रहे उतना द्वियोगियों का प्रमाण है।
- संसार राशि में से द्वियोगी तथा त्रियोगियों का प्रमाण घटाने से एक योगियों का प्रमाण निकलता है ॥261॥

तीन योग वाले जीव

देव

+

नारकी

+

संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच

+

पर्याप्त मनुष्य

→ तीन योग वाले जीव

तीन योग वाले जीव

देव	• साधिक ज्योतिषी देव
+ नारकी	• $\sqrt[2^2]{\text{घनांगुल}} \times$ जगत्श्रेणी
+ संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच	• $\dfrac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{संख्यात} \times \text{पणट्ठी}}$
+ पर्याप्त मनुष्य	• संख्यात

= साधिक देवराशी $= \text{साधिक} \dfrac{\text{जगतप्रतर}}{65536 \times \text{प्रतरांगुल}}$

दो योग वाले जीव

पर्याप्त त्रस – त्रियोगी जीव

$\frac{\text{जगतप्रतर}}{\frac{\text{प्रतरांगुल}}{\text{संख्यात}}}$ – साधिक $\frac{\text{जगतप्रतर}}{65536 \text{ प्रतरांगुल}}$

एक योगी जीव

संसारी राशि – द्वियोगी – त्रियोगी

= अनन्त

अंतोमुहुत्तमेत्ता, चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं, चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा॥262॥

- अर्थ - सत्य, असत्य, उभय, अनुभय इन चार मनोयोगों में प्रत्येक का काल यद्यपि अन्तर्मुहर्त मात्र है तथापि पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर का काल क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है और चारों की जोड़ का जितना प्रमाण है उतना सामान्य मनोयोग का काल है।
- सामान्य मनोयोग से संख्यातगुणा चारों वचनयोगों का काल है, तथापि क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है।
- प्रत्येक वचनयोग का एवं चारों वचनयोगों के जोड़ का काल भी अन्तर्मुहर्त प्रमाण ही है ॥262॥

तज्जोगो सामण्णं, काओ संखाहदो तिजोगमिदं।
सव्वसमासविभजिदं, सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी॥263॥

- अर्थ - चारों वचनयोगों के जोड़ का जो प्रमाण हो वह सामान्य वचनयोग का काल है।
- इससे संख्यातगुणा काययोग का काल है।
- तीनों योगों के काल को जोड़ देने से जो समयों का प्रमाण हो उसका पूर्वोक्त त्रियोगीजीव राशि में भाग देने से जो लब्ध आवे उस एक भाग से अपने-अपने काल के समयों से गुणा करने पर अपनी-अपनी राशि का प्रमाण निकलता है ॥263॥

कुल त्रियोगी जीवों का 4 मनयोग, 4 वचनयोग, काययोग में विभाजन

मानाकि संख्यात = 4

योग		काल	जीवों की संख्या
सत्य मनोयोग	सामान्य में सभी का काल अंतर्मुहूर्त है । आगे-आगे संख्यात गुणा है ।	1 अंतर्मुहूर्त = 1 अंत.	$\frac{\text{कुल त्रियोगी जीव} \times 1 \text{ अंत.}}{85 \text{ अंत.} \times 1701}$
असत्य मनोयोग		1 अंत × 4 = 4 अंत.	$\frac{\text{कुल त्रियोगी जीव} \times 4 \text{ अंत.}}{85 \text{ अंत.} \times 1701}$
उभय मनोयोग		4 अंत × 4 = 16 अंत.	$\frac{\text{कुल त्रियोगी जीव} \times 16 \text{ अंत.}}{85 \text{ अंत.} \times 1701}$
अनुभय मनोयोग		16 अंत. × 4 = 64 अंत.	$\frac{\text{कुल त्रियोगी जीव} \times 64 \text{ अंत.}}{85 \text{ अंत.} \times 1701}$
सामान्य मनोयोग (उपर्युक्त चारों का जोड़)		= 85 अंत.	

योग		काल	
सत्य वचनयोग	सामान्य में सभी का काल अंतर्मुहूर्त है । आगे-आगे संख्यात गुणा है ।	85 अंत. × 4 = 85 × 4 अंत.	$\frac{\text{कुल त्रियोगी जीव} \times 85 \times 4 \text{ अंत.}}{85 \text{ अंत.} \times 1701}$
असत्य वचनयोग		85 अंत. × 4 × 4 = 85 × 16 अंत.	$\frac{\text{कुल त्रियोगी जीव} \times 85 \times 16 \text{ अंत.}}{85 \text{ अंत.} \times 1701}$
उभय वचनयोग		85 अंत. × 16 × 4 = 85 × 64 अंत.	
अनुभय वचनयोग		85 अंत. × 64 × 4 =85 × 256 अंत.	
सामान्य वचनयोग (उपर्युक्त 4 का जोड़)		= 85 × 340 अंत.	

योग		काल
काययोग	सामान्य काल अंतर्मुहूर्त है ।	85 अंत. × 340 × 4 = 85 × 1360 अंत.
त्रियोगी जीवों का कुल काल		= 85 × (1 + 340 + 1360) अंत. = 85 × 1701 अंत.

द्वियोगी जीवों का वचनयोग और काययोग में विभाजन

"माना संख्यात= 4"

योग	काल	जीवों की संख्या
		$\frac{\text{कुल द्वियोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times$ अपने अपने योग का काल
अनुभय वचनयोग	1 अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{कुल द्वियोगी जीव}}{\text{5 अंत.}} \times$ 1 अंत.
काययोग	1 अंत. × 4 (वचनयोग से संख्यात गुणा)	$\frac{\text{कुल द्वियोगी जीव}}{\text{5 अंत.}} \times$ 4 अंत.
कुल काल	5 अंतर्मुहूर्त	

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता।
कम्मोरालियमिस्सयओरालियजोगिणो जीवा॥264॥

- अर्थ - कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग तथा औदारिककाययोग के समय में एकत्रित होनेवाले कार्मणयोगी, औदारिकमिश्रयोगी तथा औदारिककाययोगी जीव अनंतानन्त हैं ॥264॥

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी। सगगुणगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो॥265॥

- अर्थ - कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग एवं औदारिककाययोग का काल क्रमशः तीन समय, संख्यात आवली एवं संख्यात गुणित (औदारिकमिश्र के काल से) आवली हैं। इन तीनों को जोड़ देने से जो समयों का प्रमाण हो उसका एक योगिजीवराशि में भाग देने से लब्ध एक भाग के साथ कार्मणकाल का गुणा करने पर कार्मण काययोगी जीवों का प्रमाण निकलता है। इस ही प्रकार उसी एक भाग के साथ औदारिकमिश्रकाल तथा औदारिककाल का गुणा करने पर औदारिकमिश्रकाययोगी और औदारिककाययोगी जीवों का प्रमाण होता है॥265॥

एकयोगी जीवों का विभाजन

योग	काल	जीवों की संख्या (सामान्य से सभी अनंतानंत)
कार्मण	3 समय	$\frac{\text{कुल एकयोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times 3$ समय
औदा. मिश्र	संख्यात आवली = अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{एकयोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times$ अंतर्मुहूर्त
औदारिक	औदारिक मिश्र काल × संख्यात = संख्यात अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{एकयोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times$ सं. अंतर्मुहूर्त
कुल काल	3 समय + सं. आवली + सं. अंतर्मुहूर्त	

कार्मण काययोगी < औदारिक मिश्र काययोगी < औदारिक काययोगी

असं. गुणा संख्यात गुणा

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे।
आवलिअसंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो॥266॥

- अर्थ - संख्यात वर्ष की स्थिति वाले उसमें भी प्रधानतया जघन्य दश हजार वर्ष की स्थिति वाले व्यन्तर देवों का सोपक्रम तथा अनुपक्रम काल क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग और संख्यात आवली प्रमाण है ॥266॥

वैक्रियिक-मिश्र काययोगी जीवों की संख्या निकालने की विधि

उपक्रम-अनुपक्रम काल		
संख्यात वर्ष (10,000 वर्ष) की आयुवाले व्यंतरों में-		
उपक्रम काल	निरंतर उत्पत्ति सहित काल	=आवली / असंख्यात
अनुपक्रम काल	उत्पत्ति रहित (अंतर) काल	=12 मुहूर्त = संख्यात आवली

1 मिश्र शलाका का काल	$\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}} + 12$ मुहूर्त
10,000 वर्ष में कुल मिश्र शलाकाएं	$\frac{10{,}000 \text{ वर्ष}}{(\text{आवली}/\text{असंख्यात}) + 12 \text{ मुहूर्त}}$ =कुछ कम संख्यात गुणा संख्यात

तहिं सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु संखगुणा।
तत्तो संखगुणूणा अपुण्णकालम्हि सुद्धसला॥267।

- अर्थ - जघन्य दश हजार वर्ष की स्थिति में अनुपक्रम काल को छोड़कर पर्याप्त तथा अपर्याप्त काल सम्बंधी शुद्ध उपक्रम काल की शलाकाओं का प्रमाण सोपक्रमकाल के प्रमाण से संख्यात गुणा है और इससे संख्यातगुणा कम अपर्याप्तकाल सम्बंधी शुद्ध उपक्रमकाल की शलाकाओं का प्रमाण है ॥267।

10,000 वर्ष में शुद्ध उपक्रम शलाका का काल

=कुल मिश्र शलाका × एक शुद्ध उपक्रम शलाका का काल

=कुछ कम संख्यात × संख्यात × आवली/असं.

अपर्याप्त काल (अंतर्मुहूर्त) संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल

- कुछ कम संख्यात × संख्यात $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{\text{अंतमुहूर्त}}{10{,}000 \text{ वर्ष}}$
- $\frac{\text{कुछ कम संख्यात} \times \text{संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \text{संख्यात आवली}}{\text{संख्यात} \times \text{संख्यात आवली}}$
- $=\text{कुछ कम संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$

तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहिं।
सुद्धसलागाहिं गुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु॥268॥

- अर्थ - पूर्वोक्त व्यन्तर देवों के प्रमाण में उपर्युक्त सर्व काल सम्बंधी शुद्ध उपक्रम शलाका प्रमाण का भाग देने से जो लब्ध आवे उसका अपर्याप्त-काल-सम्बंधी शुद्ध उपक्रम शलाका के साथ गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने ही वैक्रियिकमिश्रयोग के धारक व्यन्तर देव समझने चाहिये ॥268॥

तहि सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा, वेगुव्वियकायजोगा हु॥269॥

- अर्थ - वैक्रियिकमिश्रकाययोग के धारक उक्त व्यन्तरों के प्रमाण में शेष भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिक और नारकियों के मिश्रकाययोगवालों का प्रमाण मिलाने से सम्पूर्ण वैक्रियिक मिश्र काययोगवालों का प्रमाण होता है और
- देव तथा नारकियों के काययोगवालों का प्रमाण मिलने से समस्त वैक्रियिक काययोगवालों का प्रमाण होता है ॥169॥

अपर्याप्त काल में उत्पन्न होने वाले व्यंतर, अर्थात् वैक्रियिक मिश्र काययोग स्थित व्यंतर

एक समय में उत्पन्न होने वाले व्यंतर × अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम काल

$$\frac{\text{कुल व्यंतर}}{=10{,}000 \text{ वर्ष संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल}} \times \text{अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम काल}$$

$$\frac{=\text{कुल व्यंतर}}{=\text{कुछ कम संख्यात} \times \text{संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}} \times \text{कुछ कम संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$$

$$= \frac{\text{कुल व्यंतर}}{\text{संख्यात}}$$

सर्व वैक्रियिक-मिश्र काययोग के धारक जीव

वैक्रियिक मिश्र काययोग के धारक व्यंतर +

वैक्रियिक मिश्र काययोग के धारक अवशेष भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिक

एवं सर्व नारकी

नोट– एक समय में सबसे अधिक व्यंतर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनकी मुख्यता से वैक्रियिक मिश्रयोगी जीवों का प्रमाण बतलाया है ।

वैक्रियिक काययोगी जीव

=काययोग के धारक देव और नारकी

=त्रियोगी में काययोगी – औदारिक एवं आहारक काययोगी

आहारकायजोगा, चउवण्णं होंति एकसमयम्हि।
आहारमिस्सजोगा, सत्तावीसा दु उक्कस्सं॥270॥

- अर्थ - एक समय में आहारककाययोग वाले जीव अधिक से अधिक चौवन होते हैं और
- आहारकमिश्रयोग वाले जीव अधिक से अधिक सत्ताईस होते हैं।
- यहाँ पर जो 'एक समय में' तथा 'उत्कृष्ट शब्द' है, वह मध्यदीपक है ॥270॥

आहारक और आहारक-मिश्र – संख्या

योग	संख्या
आहारक	54
आहारक मिश्र	27

- Reference : गोम्मटसार जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका, गोम्मटसार जीवकांड - रेखाचित्र एवं तालिकाओं में

Presentation developed by

Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 0731-2410880 , 94066-82889